उपनिषद् वैदिक भाष्य

ईश और केन।

भाष्यकर्त्ता :—

पण्डित पूर्णानन्दजी

...ल्य =) आना मात्र।

सुलभ साहित्य प्रचार कार्य्यालय।

उत्तम साहित्यही समाजोन्नतिका साधन है। उत्तम साहित्यके द्वाराही मनुष्य अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्यका ज्ञान लाभकर सकता है। साहित्य ही समाजका जीवन है। साहित्य ही मनुष्यको सुपथ पर लानेका एक मात्र उपाय है।

आर्य्य (हिन्दी) साहित्यमें उत्तम उत्तम ग्रन्थोंकी वृद्धि हो। सस्ते दामोंमें लोगोंको उत्तम पुस्तक पढ़नेको मिले। इस उद्देश्यसे यह कार्य्यालय स्थापित किया गया है। आशा है आर्य्य (हिन्दी) भाषा भाषी सज्जनगण इस कार्य्यालय द्वारा प्रकाशित पुस्तकोंको अपना कर इस कार्य्यालयकी उन्नतिके साधक बनेंगे।

निम्न पुस्तकें इस कार्य्यालयसे शीघ्र ही प्रकाशित होंगी :—

(१) उपनिषद् भाष्य।

(२) इटालीकी स्वाधीनता और उसका आधुनिक इतिहास।

(३) राजा राममोहनरायकी जीवनी।

(४) शास्त्रार्थ काशी—इसके अतिरिक्त और भी ग्रन्थ प्रकाशित होनेवाले हैं, जिनकी सूचना समयपर मिलेगी।

गोविन्दराम,

२१३, बहूबाजार ष्ट्रीट, कलकत्ता।

॥ ओ३म् ॥

ईशोपनिषद् वैदिक भाष्य।

श्रीमती आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाबके महोपदेशक

श्रीयुत पण्डितवर्य पूर्णानन्दजी कृत।

श्रीहासानन्दात्मज गोविन्दरामवर्मा

द्वारा

"सुलभ साहित्य प्रचार" कार्यालय

नं० २१३ बहूबाजार ष्ट्रीट कलकत्तासे

प्रकाशित।

श्रीमद्दयानन्दाब्द ३२

सम्वत् १९७२ विक्रमी सन् १९१५ ईस्वी

प्रथमावृत्ति ११००

मुद्रक—दुर्गाप्रसाद गुप्त
बी. एल. प्रेस,
१।२ मछुआबाजार ष्ट्रीट, कलकत्ता।
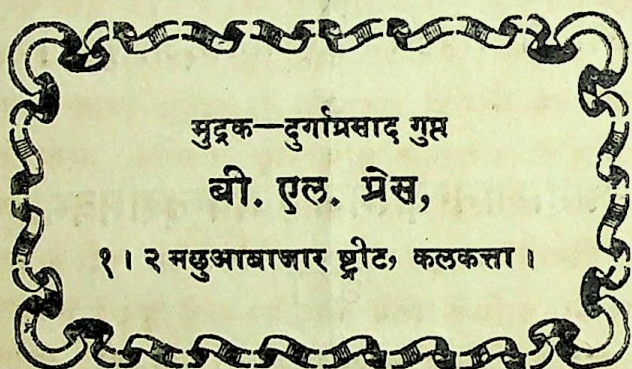
भूमिका ।

भारतवर्षका यह सौभाग्य ही कहना चाहिए कि जो संस्कृत भाषा एक मृत भाषा समझी जाती थी संस्कृतके उच्चसे उच्च ब्रह्म ज्ञानके साहित्यको कृषकोंके गीत समझे जाते थे, जगत् नियन्ता परमपिता परमात्मा की अपार दयासे इस बीशवीं शताब्दी में महर्षि दयानन्द सरस्वतीजीके परिश्रमसे ऋषिप्रणीत ग्रन्थोंके वास्तविक अर्थोंका लोगोंको पता लगा, और आज "दिन दुनी रात चौगनी" संस्कृत साहित्य की वृद्धि हो रही है, इस बात की साक्षिके लिये आप ५० वर्षके पूर्वके साहित्य की खोज करिये तब आपको पता लगेगा और मालुम होगा कि ऋषि दयानन्द यदि न होते तो संस्कृत साहित्य की दशा क्या होती ? इस बातकी खोजका भार पाठकोंके ऊपर छोड़ता हुआ कुच्छ उपनिषदोंके विषयमें लिखता हूं ।

* जो गौरव संस्कृत काव्यमें कालीदासके ग्रन्थोंका है, वही गौरव संस्कृतके धार्मिक एवं ब्रह्मविद्याके साहित्यमें उपनिषदोंको प्राप्त है, अधिक क्या कहें इन उपनिषद्रूपी सरोवरमें जिसने गोता लगाया वह आनन्द रूपी हिन्डोलेमें झूलने लगा, सिर्फ देशी ही नहीं विदेशी विद्वान् भी उपनिषदोंकी ब्रह्म शिक्षा पर लट्टू हो गए, दिल्लीके मुगल बादशाह शाहजहांका बेटा और प्रसिद्ध

* धीरेन्द्र वेदालङ्कार लिखित "उपनिषदोंकी भूमिका"से ।

औरंगजेबका भाई "दाराशिकोह"ने उपनिषदोंका फारसीमें अनुवाद (उलथा) करवाया था, उस अनुवाद को पढ़कर वह ऐसा मोहित होगया कि जिसके लिखनेके लिये मेरे पास शब्द नहीं है, और यह सम्मती बांधी कि संसारमें यदि शान्तिके देनेवाले हैं तो यही उपनिषद् हैं। उसी फारसीके उलथेको जर्मनीके प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् "शौपनहार"ने पढ़ा और पढ़तेही उनकी महिमाने उसके हृदय मन्दिरमें निवास कर लिया।

शौपनहार की उपनिषदोंके विषयमें जो सम्मति है, वह भी सुनने योग्य है। आप अपने "Welt als Wille and Vorslellung" नामक पुस्तककी भूमिकामें लिखते हैं :—

"In the whole world there is no study, except that of the originals, so beneficial and so elevating as that of the Upneshat. It has been the solace of my life, It will be the solace of my death."

"संसारके मूल ज्ञान (वेदों) को छोड़कर, उपनिषदों का अनुशीलन संसारके सभी ग्रन्थोंके अनुशीलनसे अधिक लाभदायक, और उच्च बनाने वाला है। उपनिषद् मेरे जीवन रूपी सरोवरमें अमृत सींचने वाले रहे हैं और वे मेरी मृत्युमें भी अमृतका ही काम देंगे।" इसी प्रकार दार्शनिक संसारके शिरोमणी "पालडायसन" और प्रसिद्ध प्रोफेसर मेक्समूलर आदि सभी पाश्चात्य विद्वान् एक स्वरसे उपनिषदोंकी उपयोगिता स्वीकार करते है।

श्रीशंकराचार्य्यने अपने नवीन वेदान्तका भवन इन्हीं पर खड़ा किया। भारतवर्षके वर्त्तमान सुधारकोंमें ब्राह्मसमाजके संस्थापक श्रीराजाराममोहन रायने, सनातन सिद्धान्तोंके पोषक अन्य प्राचीन ग्रन्थोंको तिलांजली देते हुए भी, उपनिषदोंको अपने लिये सदा माननीय समझा और ईश केन आदि उपनिषदोंका अनुवाद अपने हाथ से करके छपवाया। उनके पीछे ब्राह्मसमाजके नेता महर्षि देवेन्द्रनाथने उपनिषदोंके महत्वको बहुतही बढ़ाया। उनके तो उपनिषदें प्राण स्वरूप थी।

जिन उपनिषदोंकी प्राचीन और अर्वाचिन विद्वान् एक स्वरसे उपयोगिता स्वीकार करें, उन्हीं विद्वानोंकी सन्तति उपनिषदोंके पाठसे वंचित रहे और विभिन्नतः उपन्यासोंसे कालक्षेप करें, इससे बढ़कर और खेदकी बात क्या होगी।

मेरी हार्दिक इच्छा है कि प्रत्येक हिन्दु (आर्य्य) नित्य प्रति इन ग्रन्थोंका पाठ कर ब्रह्मज्ञान लाभ कर धर्म, अर्थ, काम, और मोक्षको प्राप्त करें। यही भाव रख कर मैंने अपने "सुलभ साहित्य प्रचार" कार्य्यालय द्वारा प्रकट कर अल्प मूल्यमें प्रचार करनेका संकल्प कीया है, आशा है सज्जनगण अपने इष्ट मित्रों में इन ग्रन्थोंके प्रचारमें सहायता कर मुझे उत्साहित करते रहेंगे ताकि और भी ऋषिप्रणीत ग्रन्थोंके भाष्य प्रकट कर कुछ लोक सेवा कर सकुं।

अन्तमें श्रीमती आर्य्यप्रतिनिधि सभा पंजाबके महोपदेशक पूज्यपाद श्रीमान् पण्डितवर्य्य पूर्णानन्दजीको कोटिशः धन्यवाद हैं कि जिन्होंने इस तथा और भी ऋषिप्रणीत ग्रन्थोंके सरल भाष्य कर देना स्वीकार किया है।

प्रकाशक—

* ओ३म् *

ईशोपनिषद् वैदिक भाष्य

ओं पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

परमात्मा पूर्ण है और यह जगत् भी पूर्ण है, पूर्णेश्वरसे रचा जगत् पूर्ण है, पूर्ण परमात्माके पूर्ण जगत्को पकड़के शेष पूर्णही रहता है। अर्थात् नियम बद्ध जगत्के काम करनेसे मनुष्य भी पूर्ण (त्रुटियोंसे रहित) हो जाता है।

ईशावास्यमिदꣳसर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेनत्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।

हे मनुष्य (यत्) जो (इदं) कार्य्यसे लेकर कारण तक (सर्वं) सब (जगत्यां) ब्रह्माण्डमें (जगत्) गमनशील है वह सर्व ईशसे आच्छादित है उस ईश्वरके दीयेसे अपना पालन पोषण कर किन्तु (कस्यश्वित्) किसीके भी (धनम्) वस्तु मात्रकी (मा) मत (गृधः) अभिलाषा कर ॥ १ ॥

भावार्थ—यह सारा संसार ईश्वरसे भरपूर है, ईश्वर इसके अन्दर बाहर विद्यमान् हैं वही इसके मालिक हैं अतः कर्मसे जो वे तुम्हे दें उसमें आनन्द मना, लोगोंके पदार्थोंकी अभिलाषा न कर।

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म्म लिप्यते नरे

(इह) इस संसार वा इस नरदेहमें (कर्म्माणि) परोपकारादि कर्मोंको (कुर्वन्) करता हुआ (एव) ही (शतम्) सौ (समाः) वर्ष (जिजीविषेत्) जीवनकी इच्छा करे (एवम्) इस प्रकार शुभ कर्मोंमें प्रवर्तमान् (त्वयि) तुझे (नरे) नरमें (न) नहीं (कर्म) अधर्म युक्त कर्म (लिप्यते) लिप्त होता (इतः) इससे (अन्यथा) विपरीत (न) नही (अस्ति) हैं अर्थात् अन्य किसी प्रकारसे अशुभ कर्म नहीं दूर होते॥ २॥

भावार्थ—मनुष्यको उचित है कि सत् कर्म करता हुआ जीनेकी इच्छा करे सत् कर्ममें प्रवृत्त हुए बिना असत् कर्मोंसे छूटना असम्भव है।

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः
ताꣳस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति येकेचात्महनोजनाः

(असुर्य्या) प्राणपोषकोंके (नाम) प्रसिद्ध (तेलोकाः) वह लोक (अन्धेनतमसा) गाढ़ अन्धेरेसे (आवृता) ढके हुए (तान्) उनको (ते) वह (प्रेत्य) मरकर (अभि) सर्व ओरसे (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं (येकेच) जो कोई (आत्महेनोजनाः) आत्मघाति जन हैं॥ ३॥

भावार्थ—जो कोई आत्मघाती अधर्मी जन हैं वह मर कर उस गतिको प्राप्त होते हैं जो प्राण पोषक असुरोंकी कहाती है, जहां केवल अज्ञानही भरा है और कुछ नहीं।

अनेजदेकम्मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्। तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत् तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥४॥

(यत्) जो (एकम्) एक अद्वितीय (अनेजत्) अचल अविनाशी (मनसः) मनके वेगसे भी (जवीयः) वेगवान् है (पूर्वम्) सबसे आगे (अर्षत्) प्राप्त (एनत्) इस ईश्वर को (देवाः) इन्द्रिय (न) नहीं (आप्नवन्) प्राप्त होते और वह सर्वत्र (तिष्ठत्) स्थिर एक रस है (धावतः) विषयोंमें गिरते हुए (अन्यान्) अन्य इन्द्रिया-दिकोंका (अत्येति) उल्लंघन करते हैं (तस्मिन्) उस ईश्वरके व्यापकतामें (मातरिश्वा) सूत्रात्मा जीव (अप) कर्मों को (दधाति) धारण करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो ईश्वर एक सर्वत्र परिपूर्ण अचल एक रस है मनसे भी वेगवान् है उसको इन्द्रियें नहीं पहुचती वह सबसे पूर्व वहां है जहां इन्द्रियें चलके जावेंगी विषयोंमें गिराने वाली इन्द्रियोंका उल्लंघन करके जीवात्मा उसीमें कर्म करता फल भोगता है, वही सर्वाधार है।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तद-न्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥५॥

(तत्) वह ब्रह्म मूर्खों को (एजति) चलायमानसा दिखता है वस्तुतः (तत्) वह ब्रह्म (नएजति) अपने स्वरूपसे चलायमान नहीं है (तत्) वह (दूरे) मूर्खों से दूर है (तत्) वह वस्तुत (अन्तिके) निकट है (तत्) वह

(अस्य) इस (सर्वस्य) समस्त ब्रह्माण्डके (अन्तः) भीतर (उ) और (तत्) वह (अस्य सर्वस्य) इस प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष जगत्के (बाह्यतः) बाहर भी वर्तमान है ॥ ५ ॥

भावार्थ—ईश्वर मूर्ख अज्ञानियोंकी समझसे बाहर है वह उसको मनुष्यवत् चलायमान समझते हैं परन्तु वह अचल एक रस है अज्ञानी उसको दूर समझते हैं परन्तु वह सबके अन्दर बाहर परिपूर्ण है।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानु पश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥६॥

(यः) जो विद्वान् (आत्मनि) परमात्मामें (एव) ही (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणी अप्राणियोंको (अनु पश्यति) साधन करनेके पश्चात् देखता है और जो (सर्व भूतेषु) सम्पूर्ण चराचरमें (आत्मानं) आत्माको (च) भी देखता है (ततः) तिससे (न) नहीं (विजुगुप्सते) संशयको प्राप्त होता है, अर्थात् जीवन मुक्त हो जाता है ॥६॥

भा०—जो ज्ञानी ईश्वरको सर्वत्र और सबको ईश्वरमें निश्चय रूपसे जानता है, वह पापोंसे हट जाता है और आत्मकल्याणार्थ साधन करता है तो दुःखोंसे छूटके जीवन मुक्तावस्थाको प्राप्त हो जाता है।

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्रको मोहः कः शोकएकत्वमनुपश्यतः ।७।

(यस्मिन्) जिस समाधि कालमें (विजानतः) योगी को (सर्वाणि भतानि) प्राणी मात्र (आत्मा एव) अपने

तुल्यही (अभूत) होते हैं (तत्र) उस अवस्थामें (एकत्वम्) एक ईश्वरको (अनुपश्यतः) देखता हुआ (कः) कौन (मोहः) मोह (कः) कौन (शोकः) शोक, अर्थात् शोक मोहसे विनिर्मुक्त हो जाता है ॥ ७ ॥

भा०—योगी जब समाधि लगाता है, केवल ईश्वरके ही स्वरूपमें मग्न होता है अपने आपको भी भूल जाता है तब शोक मोहादि द्वन्द्वसे छूटकर जीवन मुक्तिका सुख पाता है।

सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धम पापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८॥

(सः) वह ईश्वर (परिअगात्) सब ओरसे प्राप्त है (शुक्रम) अत्यन्त पराक्रम युक्त सर्वशक्तिमान् (अकायम्) शरीरसे रहित (अव्रणम्) चलने फिरने से रहित (अस्नाविरम्) नस नाड़ीके बन्धनसे रहित (शुद्धम्) शुद्धस्वरूप (अपापविद्धम्) सर्व पापोंसे पृथक् (कविः) ज्ञानवान् (मनीषी) सबके मनका साक्षी (परिभूः) सर्वोपरि बिराजमान् (स्वयंभू) उत्पत्तिसे रहित वह ईश्वर (शाश्वतीभ्यः) सनातन (समाभ्यः) प्रजाओंके लिये (याथातथ्यतः) यथार्थ भावसे (अर्थान्) वेदद्वारा (व्यदधात) विधान करता है ॥ ८ ॥

भा०—सर्व व्यापकेश्वर, शुद्धस्वरूप, निर्विकार, निरा-

कार, सर्वज्ञ, सर्वशक्ती परमात्मा सम्पूर्ण प्राणियोंको वेदविद्या द्वारा संपूर्ण कर्म फलका विधान करता है और स्वयं निरलेप हैं ।

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपास्ते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाᳪरताः ॥९॥

(ये) जो अज्ञानीजन (अविद्यां) केवल कर्मकाण्डका (उपासते) सेवन करते हैं (ते) वे (अन्धतमः) आत्माके प्रकाशसे रहित जन्म मरण रूपी प्रवाहको (प्रविशन्ति) प्राप्त होते हैं (य उ) और जो (विद्यायाम्) केवल ज्ञानमें (रताः) रमते हैं (ते) वे (ततः) उस कर्मोपासक से (भूयइव) भी अधिक (तमः) दुःख भोगते हैं ॥ ९ ॥

भा०—केवल ज्ञानशून्य कर्मोंमें लगे रहनेसे मनुष्यका कल्याण नही होता वह जन्म मरणके चक्रसे नही छूटता, और जो ईश्वर, जीव, प्रकृति, कर्म पुनर्जन्मादिके ज्ञानमें रत रहता हूआ भी ब्रह्मचर्य योगाभ्यासादि कर्म नही करता वह उससे भी अधिक दुःख पाता है अर्थात् उसको उत्तम देहादिकी प्राप्ति भी नही होती ।

अन्यदेवाहुर्विद्यया ऽन्यदाहुरविद्यया ।
इतिशुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विच चक्षिरे ॥१०॥

(विद्यया) ज्ञानमार्गके अनुष्ठानसे (अन्यदेव) और ही फल (आहुः) कहते हैं और (अविद्यया) कर्मानुष्ठानसे (अन्यद्) और ही फल (आहुः) कहते हैं

(इति) इस प्रकार (धीराणां) ज्ञानी जनोंके उपदेश (शुश्रुम:) सुनते हैं (ये) जो उपदेशक (नः) हमारे लिये (तत्) उस ज्ञानकी (व्याचचक्षिरे) व्याख्यान करते हैं ॥१०॥

भा०—ज्ञान और कर्मानुष्ठान का फल पृथक् पृथक् है, ऐसा गुरूजनोंको चाहिये कि, शिष्यवर्गको उपदेश दे, जिससे साधक लोग भ्रम में न पड़ें।

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयꣳसह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वाविद्ययाऽमृतमश्नुते ११

(यः) ज्ञानवान् (विद्यां) ज्ञान (च) और (अविद्यां) कर्म (उभयं सह) दोनोंको साथ जानता है (तत्) इससे (सः) वह यथार्थ ज्ञानी (अविद्यया) कर्मानुष्ठानसे (मृत्युं) जन्म मरणके चक्रको (तीर्त्वा) तरके (विद्यया) ज्ञानसे (अमृतम्) मोक्ष रूप सुखको (अश्नुते) प्राप्त करता वा भोगता है ॥ ११ ॥

भा०—विद्वान्को उचित है कि कर्म और ज्ञानका स्वरूप जानके दोनोंका साथ २ अनुष्ठान करे, ऐसा करनेसे कर्म द्वारा अन्तःकरण शुद्ध होकर मल और जन्मोद्भवकर्म का संस्कार दूर होगा और ज्ञान द्वारा मुक्त होके ईश्वरके आनन्दभोगका भागी बनेगा।

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳरताः ।

(ये) जो अविद्वान् (असम्भूतिम्) उत्पत्ति रहित कारण प्रकृतिको (उपासते) सेवते हैं वे (अन्धन्तमः) अज्ञानरूप अन्धकारको (प्रविशन्ति) प्राप्त होते हैं (ततः)

उससे (भूय इव) बहुत अधिक (तमः) अन्धकारको प्राप्त होते हैं (य उ) और जो (सम्भूत्याम्) कार्य्य जगत्में (रताः) रत है ॥ १२ ॥

भा०—जो ईश्वरको छोड़कर कारण प्रकृतिको ही सर्वाधिष्ठान समझ रहे है वे इस अज्ञानसे दुःख भोगते हैं, और जो कार्य्य रूप जगत्के भोगविलासमें वा मृत पाषाणादि की पूजामें लगे रहते हैं वे उससे भी अधिक दुःखको भोगते हैं ।

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुमधीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१३॥

(सम्भवात्) कार्य जगत्की सेवासे (अन्यत्) और (एव) ही फल (आहुः) कहते हैं (असम्भवात्) जड़ कारण को उपासना से (अन्यत्) और (एव) ही फलको (आहुः) कहते हैं (इति) इस प्रकार (शुश्रुम) सुनते हैं (ये) जो उपदेष्टा (नः) हमारे लिये (तत्) उसका (विचचक्षिरे) व्यख्यान करते हैं ॥ १३ ॥

भा०—ज्ञानी जनोंको उचित है कि कार्य कारण जगत् की उपासना से क्या २ फल होता है यह प्रथक् २ व्याख्यानादि द्वारा जिज्ञासुओंको दर्शावें ।

सम्भूतिञ्च विनाशंच यस्तद्वेदो भयँसह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते

(यः) जो विद्वान् (सम्भूतिम्) शरीरादि कार्य जगत (च) और (विनाशम्) जिसमें सर्व अदृश्य होके रहता

है ऐसे कारण रूपको (च) तथा उसके गुणकर्मादिकोंको (तत् उभयम्) इन दोनोंके तत्वोंको (सह) साथ जानता है वह (विनाशेन) अदृश्य जगत्के कारणके यथार्थ ज्ञानसे (मृत्युम्) मृत्यु रूपी दुःखको (तीर्त्वा) तरके (सम्भूत्या) कार्य रूप जगत्के साथ (अमृतम्) मृत्यु रहित सुखको (अश्नुते) प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

भा०—जब तक कार्य और कारण तथा उसके गुण कर्म को न जान ले तब तक उससे छूटना असम्भव है अतः इस श्रुतिमें कार्य कारणके यथार्थ ज्ञानसे जो ज्ञानीको लाभ होता है वह बताया है, अर्थात् कार्य जगत्के तत्व ज्ञान और कारण रूप प्रकृति और उसके गुणकर्मादिके साथ तत्वज्ञान से फल यह है कि कारण ज्ञानसे दुःखोंको तरकर कार्यरूप संसारमें जीतेही अमृतरूप सुखको प्राप्त करता है अतः उभय ज्ञानकी आवश्यक्ता है।

हिरण्मयेनपात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्वम्पूषन्नपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये ॥१५॥

(सत्यस्य) मोक्षका (मुखम्) द्वार (हिरण्यमयेन) सुवर्णादि (पात्रेण) पात्र ऐश्वर्यसे (अपिहितम्) ढका हुआ है (तत्) उसको (त्वम्) तू (पूषन्) कर्मोंसे पुष्ट विद्वन् (अपावृणु) खोल दे (सत्यधर्माय दृष्टये) सत्यधर्म अर्थात् सत्य स्वरूप देखनेके लिये ॥ १५ ॥

भा०—मोक्षका द्वार धन, ऐश्वर्य भोगविलासोंसे बन्द रहता है, यदि मोक्ष पाना चाहो तो भोगोंको हटाके मोक्षके साधन करो तो सत्यरूप देखोगे।

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह । तेजो यत्ते रूपङ्कल्याणतमन्तत्ते पश्यामि योऽसावसौपुरुषः सोऽहमस्मि ॥१६॥

(पूषन् एकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य) हे सर्व पोषक सब को धर्म की पुष्टी देने हारे हे एकर्षे ! सबको समान एकसा देखने वाले हे यम न्यायकारिन् हे सूर्य प्रकाशक हे प्राजापत्य सर्व नियन्ता प्रभो (व्यूह रश्मीन्) फैला अपनी ज्ञान किरणको (समूह तेजः) इकट्ठाकर अपने न्याय रूपी तेज को (यत्) जो (ते) तेरा (रूपङ्कल्याणतमम्) अत्यन्त आनन्द प्रद मोक्ष सुख है (तत्) वो (ते) तेरा (पश्यामि) देखूं (यः) जो (असौ असौ) वह वह सर्वात्मा है (सः अहं अस्मि) वह मैं हुं अर्थात् उपासक उपास्य के प्रेममें मग्न हो अपनेको उस अवस्थामें भूल जावे ॥ १६ ॥

भा०—धर्मावह प्रभूसे जीवकी अन्त्यम प्रार्थना है कि हे पूषन् और हे एकर्षे हे यम सूर्य प्राजापत्य परमात्मन् आप अपने न्यायसे तो हमको प्राप्त नहीं, अतः समूह तेज इकट्ठा कर तेजको और व्यूह रश्मीन् फैला अपने दया रूपी ज्ञान किरण को तो जो आपका आनन्दप्रद मोक्ष स्वरूप है उसको देखूं यह जो आप हैं, जो आदित्यमें है जो सर्वत्र है वह मेरेमें भी है मैं भी उसीका हूं वह मेरा है।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳशरीरम् । ओ३म् क्रतोस्मर क्लिवे स्मर कृतꣳस्मर ॥१७॥

ज्ञानवानको सदा ऐसी प्रार्थना करनी कही है कि मेरा (वाय) प्राण (अनिलम् अमृतम्) विकार रहित मोक्ष

प्राप्त करे (अथ) और (इदं शरीरम्) यह स्थूल शरीर भस्मान्त हो (क्रतो) हे विद्वन् (ओ३म्) प्रणवोपासना कर अर्थात् ईश्वरका जो निज नाम ओ३म् है उसको (स्मर) स्मरण कर (क्लवे) अपने कल्याणार्थ (स्मर) ध्यान चिन्तन कर (कृतं) किये हुए यमादि साधनो को (स्मर) याद कर यह तेरे सहायक हैं ॥ १७ ॥

भा०—मोक्षार्थी जीव सदा और अन्त कालमें विशेषतः यह समझे कि मेरा (प्राण) आत्मा विकार रहित जो मोक्ष है उसको प्राप्त हो और शरीरका अन्त तो भस्म तक है, ईश्वर उपदेश देते हैं कि जीव मोक्षार्थ ओंकारोपासना कर और अपने पूर्वोपार्जित पुण्य सत्कर्मादि को याद कर जैसा कर्म करेगा वैसाही फल प्राप्त होगा।

(वेदमें यह मन्त्र ऐसाही है परन्तु उपनिषदोंमें पाठ भेद से यह श्रुति लिखी गई है,) यथा—

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तँशरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर कृतँस्मर क्रतोस्मर कृतँ स्मर ॥ १७ ॥

(वायु) प्राण (अनिलम्) विकार रहित (अमृतम्) मोक्ष को प्राप्त करे (अथ) तत् पश्चात् शरीर भस्मान्त हो (क्रतोः) हे संकल्प मय मनः तू (ओ३म् स्मर) ओंकार का स्मरण कर (कृतंस्मर) किये कर्मोंका स्मरण ध्यान कर (क्रतोः) हे ज्ञानिन् अपने (कृतम्) कियेको (स्मर) याद कर ॥ १७ ॥

भा०—यह सूत्रात्मा विकार रहित मोक्षका उपाय करे और शरीरका अन्त भस्म तक है यहां तक ही प्राणियोंके

साथ सम्बन्ध है मन जो सङ्कल्प विकल्प करने वाला है वह ईश्वर के निज नाम ओंकार का बारम्बार ध्यान चिन्तन करे और ज्ञानवान् को अपने किये कर्मों का ही ध्यान करना चाहिये अर्थात् जैसा उसने किया है वैसाही फल मिलेगा ऐसा समझे और आत्मा ईश्वरके प्रेममें मग्न हो किसी अन्य वस्तु का कुछ भी ध्यान न करे और अन्तमें यह प्रार्थना करे—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराण मेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ १८ ॥

हे प्रकाशस्वरूपाग्ने (देव) दिव्यरूप आप (विश्वानि) सब (वयुनानि) कर्मों को (विद्वान्) जानते हुए (अस्मान्) हमको (राये) अपने मोक्षरूप ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये (सुपथा) सरल मार्ग से (नय) चलाइये और (जुहुराणम्) कुटिल (एनः) पापको (अस्मात्) हमसे (युयोधि) दूर कीजिये (ते) आपके लिये हम (नमः उक्तिम्) नमस्कार (विधेम) विधान करते हैं ॥ १८ ॥

भा०—ईश्वर से अन्तमें यही प्रार्थना करनी चाहिये कि अपना मोक्षका मार्ग आप बतावें और हमारे कर्मों को जानते हुए जो हमारे लिये योग्य हो सो करे अपने मार्गमें सरलतासे लेचले हम कुछ नहीं देसकते केवल नमस्कार ही आपको भेट करते हैं ।
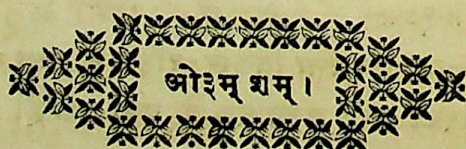
* ओ३म् *

केनोपनिषद् वैदिक भाष्य ।

ओं केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणःप्रथमः प्रैति युक्तः । केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥१॥

(केन) किससे (प्रेषितम्) प्रेरणा किया हुआ (मनः) संकल्प विकल्पात्मिक मनः (इषितम्) अभिष्ट विषयको (पतति) प्राप्त होता है और (केन) किससे (प्राणः) पञ्च प्रकारका वायु (प्रथमः) सबसे पूर्व (प्रैति) गमनागमन करता है (केन) किससे (इषताम्) नियत की हुई (इमाम्) इस (वाचम्) वाणीको (वदन्ति) कहते हैं और (कः उ) कौन (देवः) देव (चक्षुः) नेत्र और (श्रोत्रम्) कानको स्व स्व विषयमें (युनक्ति) नियुक्त करता है ॥ १ ॥

भावार्थ—संसारमें संपूर्ण प्राणियोंका स्व स्व व्यापार इन्द्रियोंका स्व स्व विषयोचित कर्म किस देवकी आज्ञा वा प्रेरणा से हो रहा है इस समस्त जगत्का नियन्ता कौन है ? यह प्रश्न शिष्यके तोर पर किया गया है ।

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचꣳस उ प्राणस्य प्राणः । चक्षुषश्चक्षुरति-मुच्यधीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति २

(श्रोत्रस्य) करण इन्द्रियका (श्रोत्रम्) सुननेकी शक्ति देने वाला (मनसः) मनका (मनः) विचार वा मननशक्ति देनेवाला (यत्) जो ब्रह्म (वाचोह) वाणीका (वाचम्) वाणी है (सः उ) वही परमेश्वर (चक्षुषः) नेत्रेन्द्रियका (चक्षुः) नेत्र है. इन इन्द्रियादिकों को (अतिमुच्य) प्रथक करके (धीराः) ध्यान शील योगी जन (प्रेत्य) इन्द्रियादि शरीर समुदायको छोड़के (अस्मात्) इस (लोकात्) लोक जनित वासना जाल रूप जन्म मरणके बन्धनोंसे (अमृताः) मरण धर्म रहित (भवन्ति) हो जाते हैं ॥ २ ॥

भा०—श्रोत्रादि इन्द्रियोंका जो नियामक चेतन ब्रह्म है वही श्रोत्रादि इन्द्रियोंको स्व स्व कारण गुणानुकूल व्यापार में नियत करता है, ज्ञानी जन इन्द्रिय जन्य सुखोंसे प्रथक् होकर इस शरीरका त्याग करके ईश्वर के ध्यानसे मुक्त होते हैं।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे ॥ ३ ॥

(तत्र) ब्रह्ममें (चक्षुः) नेत्र (न गच्छति) नहीं जाता (वाक्) वाणी (न गच्छति) नहीं जाती (नो मनः) मन भी उस ब्रह्ममें नहीं पहुंचता इस कारण (न विद्मः) हम लोग उसको नहीं जानते (न विजानीमः) विशेष करके भी हम नहीं जानते। अर्थात् सामान्य और विशेष दोनों प्रकारसे हम नहीं जान सकते (यथा) जैसे (एतत्) इस

ब्रह्मका (अनुशिष्यात्) उपदेश करें क्योंकि उपदेश यथावत् जानेहुएका ही होता है (विदितात्) जाने हुयेसे (तत्) वह (अन्यत्) निराला है (अथ) और (अविदितादधि) अविदित अनजानेसे अलग है (इति) इस प्रकार (पूर्वेषां) पूर्वाचार्यों के उपदेशोंको (शुश्रुमः) सुना है (ये) जो आचार्य (नः) हमारे लिये (तत्) उस व्यापक ब्रह्मका (व्याचचक्षिरे) उपदेश करते हैं ॥ ३ ॥

भा०—गुरु शिष्यको सदैव ईश्वरके निराकार और इन्द्रियागम्यका उपदेश करे तथा इन्द्रियोंकी ईश्वरतक पहुंच नहीं है यही पूर्वाचार्योंका सिद्धान्त है कि वह विदित अविदित सबसे निराला मन वाणी आदि इन्द्रिका अविषय है।

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धिनेदं यदिदमुपासते ॥४॥

(यत्) जो ब्रह्म (वाचा) वाणी से (अनभ्युदितम्) प्रकाशित नहीं होता (येन) जिस ब्रह्मसे (वाग्) वाणी (अभ्युद्यते) प्रकाशित होती है (तत् एव) उसी वाणी की वाणी इत्यादि प्रकारसे कहे हुयेको (त्वम्) तू (ब्रह्मविद्धि) ब्रह्म जान और (यदिदम्) मनुष्य जिस वाणीसे प्राप्त होने योग्य शब्दादि कार्य्यको (उपासते) सेवन करते हैं (तदिदम्) वह यह (न) ब्रह्म नहीं है ॥ ४ ॥

भा०—ईश्वर वाणीका प्रकाश करने वाला है परन्तु स्वयं वाणीका विषय नहीं जो शब्द वाणीसे कहा जाता है वह ईश्वर नहीं।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धिनेदं यदिदमुपासते॥ ५॥

(यत्) जो ब्रह्म (मनसा) मनसे (नमनुते) निश्चय नहीं करता (येन) जिस ईश्वरसे (मनः) अन्तः करण (मतम्) जाना गया ऐसा (आहुः) ब्रह्मवेता कहते हैं (तदेव) उसी मनके मनको (त्वम्) तू (ब्रह्म) ब्रह्म (विद्धि) जान (नेदम्) नहीं ये (यदिदम्) जो यह (उपासते) सेवन करते हैं॥ ५॥

भा—जो मनका विषय है वह ब्रह्म नहीं क्योंकि मनकी पहुंच श्रुत और दृष्ट पदार्थमें होती है परन्तु ब्रह्म न श्रुत है न दृष्ट है जो मनसे निश्चय नहीं होता मन भी जिससे निश्चय किया जाता है उसीको ब्रह्म समझो ऐसा ब्रह्मवेत्ता लोग कहते हैं।

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥६॥

(यत्) जो ब्रह्म (चक्षुषा) नेत्रसे (नपश्यति) नहीं देखता (येन) जिस ब्रह्मकी सत्तासे (चक्षूंषि) नेत्रोंको (पश्यति) देखता है (तदेव) उसी ही को (ब्रह्म) ब्रह्म (त्वं) तू (विद्धि) जान (यदिदम्) जो नेत्रसे देखने योग्य नेत्रके विषयको मनुष्य (उपासते) सेवन करते हैं वह (इदम्) यह ब्रह्म (न) नहीं है॥ ६॥

भा०—ईश्वर नेत्रका विषय नहीं है परन्तु उसकी सत्ता से नेत्रमें भी देखनेकी शक्ति आती है जिससे वह देखनेकी

शक्ति होती है उसको ब्रह्म समझना चाहिये और जिसको संसारी जन नेत्रसे देखते वा सेवन करते हैं वह ब्रह्म नहीं ।

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिद मुपासते ।७।

(यत्) जो ब्रह्म (श्रोत्रेण) करणेन्द्रियसे (न शृणोति) नहीं सुनता (येन) जिस ब्रह्मकी सत्तासे (इदम्) यह (श्रोत्रम्) करणेन्द्रिय (श्रुतम्) सुनता है (तदेव) उसीको (ब्रह्म) ब्रह्म (त्वं) तू (विद्धि) जान (यदिदम्) जिस श्रोत्रेन्द्रियके शब्द विषयको मनुष्य (उपासते) सेवन करते हैं (नेदम्) वह ब्रह्म नहीं है ॥ ७ ॥

भा०— जो ईश्वर कानका विषय नहीं परन्तु कान भी जिस ईश्वरकी सत्तासे सुनता है उसीको ब्रह्म समझना चाहिये जिसको कानसे लोग सुनते हैं वह ब्रह्म नहीं

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।८।

(यत्) जो ब्रह्म (प्राणेन) प्राणसे (नप्राणिति) श्वास नहीं लेता (येन) जिस ब्रह्मकी सत्तासे (प्राणः) प्राण (प्रणीयते) अपना कर्म श्वास लेता देता है (त्वम्) तू (तदेव) उसीको (ब्रह्म) ब्रह्म (विद्धि) जान (यदिदम्) जिस प्राण वायुका मनुष्य (उपासते) सेवन करते हैं (इदम्—न) वह ब्रह्म नहीं ॥ ८ ॥

भा०—जो प्राणोंके श्वासप्रश्वास अर्थात् आने जानेसे श्वास नहीं लेता परन्तु जिस जीवनी सत्तासे श्वास भी

आता जाता है उसी सत्ताको ब्रह्म समझ जिस प्राण वायु का मनुष्य सेवन करते हैं वह ब्रह्म नहीं है।

इति प्रथम खण्डः।

गुरु शिष्यके सम्बाद प्रश्नोत्तरसे यह प्रथम खण्ड समाप्त हुआ

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपं। यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नुमीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम् ॥९॥

(यदि) जो (मन्यसे) तू समझता है कि (सुवेदइति) वह अच्छे प्रकारसे जानता हूं अर्थात् मैं उसको पूर्ण जानता हूं तो (दभ्रमेव) निःसन्देह (अपि नूनम्) स्वल्प ही जानता है (त्वं वेत्थ ब्रह्मणः रूपम्) तू जानता है ब्रह्म का रूप (यदस्य) जो इसका रूप (त्वम्) तू जानता है (यत्-अस्य-देवेषु) जो इसका विद्वानोंमें (अथनु) तो निःसन्देह (मीमांस्यमेव) विचारने योग्य ही है (ते) तुझे (मन्ये) समझता हूं (विदितम्) जाना हुआ ॥ ९ ॥

भा०—जो तू समझता है कि मैं ब्रह्मको पूर्णतया जानता हूं तो निःसन्देह तू ब्रह्मको स्वल्प जानता है, जो तू जानता है जो बड़े २ ज्ञानी जानते हैं वह भी स्वल्प ही है क्यों कि ब्रह्म अनन्त इयत्तारहित—वेहद-है अतः तुझे अपना जाना हुआ फिर मीमांस्य विचारने योग्य है।

नाहं मन्ये सुवेदेति नोनवेदेति वेदच।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेदच ॥१०॥

(न अहं मन्ये) मैं नहीं जानता हूं (सुवेदः इति) कि मैं ब्रह्मको पूर्ण जानता हूं (नो नवेद) यह भी नहीं कि नहीं जानता हूं (वेदच) और कुच्छ जानता भी हूं (यः नः तत्-वेद) जो हममें से उसको जानता है (तत् वेद) उसको जानता है (नो, न; वेद इति) नहीं नहीं जानता हूं यह (वेदच) जानता हूं ॥ १० ॥

भा०—शिष्य-मैं यह नहीं मानता कि मैं पूर्णतया ब्रह्म को जानता हूं । और नहीं यह कि, मैं नहीं जानता हूं क्योंकि कुच्छ तो जानता हूं । हममें से जो कोई उस ब्रह्मको जानता है वह इस बातको जानता है कि, मैं नहीं जानता, और जानता हूं अर्थात् सम्पूर्ण तो जानना असम्भव है, परन्तु यह भी नहीं कि कुच्छ भी न जानता हूं यह अपार विश्वही उसकी साक्षी है ।

यस्यामतं तस्य मतंमतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ११

पूर्व कथनका सारांश यह है कि—

(यस्य) जिसके (अमतम्) वह ब्रह्म समझा हुआ नहीं (तस्य) उसके (मतम्) ब्रह्म समझा हुआ है (मतं-यस्य न वेद-सः) मत जिसके नहीं जानता वह अर्थात् जो वह समझता है कि मैं ब्रह्मको (मतम्) जानता हूं (नवेद स) वह नहीं जानता क्योंकि (विजानताम्) जानने वालोंको (अविज्ञातम्) अज्ञात है और (अविजानताम्) न जानवालों का (विज्ञातम्) ज्ञात है ॥ ११ ॥

भा०—जो यह नहीं जानते कि "एतावास्य महिमा" ये जितना जगत् है यह सब उसकी महिमाका अल्प भाग

है और वह महान्से भी महान् है। जो अज्ञानी यह कहते हैं कि, हम ब्रह्मको जानते हैं और जो यह समझते हैं कि, वह अनन्त सीमा रहित अपार है, जो कहते हैं कि, हम उसको सम्यक् (अच्छे प्रकारसे) जान नहीं सकते अतएव जिसका यह मत है कि मैं ब्रह्मको जानता हूं। तस्य उसका मत अमत है उसका विचार ठीक नहीं जो यह कहते हैं कि, हम सम्यक् जान नहीं सकते उनका विचार ठीक है।

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते।
आत्मना विंदते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्॥१२

(प्रतिबोध विदितम्) इन्द्रियोंको विषयों से हटाके धारणा ध्यानादि संयम द्वारा जो आत्माका साक्षात्कार होता है वह प्रतिबोध कहाता है प्रतिबोधसे विदित जाना गया ब्रह्म (मतम्) ठीक जान लिया मानते हैं। मुमुक्षजन (हि) निश्चय करके पूर्वोक्त मुमुक्षु (अमृतत्वम्) नाश रहित सुखको (विन्दते) प्राप्त होता है (आत्मना) अपने स्वरूपसे (वीर्यम्) योगजबलको (विन्दते) प्राप्त करता है (विद्यया) ब्रह्मज्ञानसे (अमृतम्) मोक्षको (विन्दते) प्राप्त होता है॥१२॥

भा०—इन्द्रियों द्वारा जो ज्ञान होता है वह बोध कहा जाता है। परन्तु ब्रह्म इन्द्रियातीत है। अतः योगीजन समाधिमें उसको उपलब्ध करते हैं। उसीको प्रतिबोध कहा है प्रतिबोधसे जाना गया ब्रह्म सत्य है, उसका प्रकार यह है प्रथम आत्मासे योगजबल धारण करे, तब ब्रह्म ज्ञान होता है। उस ब्रह्म ज्ञानसे मोक्ष पाता है।

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावे-
दीन्महती विनष्टिः। भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य
धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥१३॥

(इह) इस मनुष्य जन्ममें (चेत्) यदि आत्माको (अवेदीत्) जानलेवे (अथ) तो मनुष्य जन्म (सत्यं) सफल (अस्ति) है और (इह) इस मनुष्य जन्ममें (न अवेदीत्) न जाना गया तो महती-बड़ी-(विनष्टिः) हानि होगी अतः (धीराः) ध्यानशील विद्वान् (भूतेषु भूतेषु) चराचर जगत्में (विचिन्त्य) ब्रह्मको विचारके (अस्मात् लोकात्) इस प्रत्यक्ष संसारसे (प्रेत्य) शरीर को छोड़कर ईश्वरोपासना द्वारा (अमृता) जन्म मरणादि दुःखोंसे रहित होकर मुक्त (भवन्ति) होते हैं ॥ १३ ॥

भा०—मनुष्य जन्म पाकर यदि परमात्माका ज्ञान प्राप्त हो तो यह मनुष्य जन्म सफल है। और यदि मनुष्य जन्म पाकर भी भोग विलासोंमें ही रहें ईश्वरका ज्ञान न प्राप्त करें तो महान् अनर्थ है क्योंकि न जानें यह मनुष्य जन्म फेर कब प्राप्त हो। अतः मोक्षार्थी पुरुषको उचित है कि, चराचर जगत्में परमात्माको चित्तवृत्तियोंका निरोध करके विचार करता रहे, ऐसे विचार करते २ जब यह शरीर छूट जावेगा तब जन्म मरण के क्लेशोंसे रहित हो जावेगा।

इति द्वितीयः खण्डः।

—:०:—

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजयेदेवा अमहीयन्त त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ॥१४॥

(ह) निश्चयसे (ब्रह्म) ब्रह्म (देवेभ्य) पृथिवी आदि भूतोंसे (विजिग्ये) विजयको प्राप्त हुआ (तस्य ह ब्रह्मणः विजये) उसीही ब्रह्मके विजयमें (देवा अमहीयन्त) पृथिवी आदि देवता महत्वको प्राप्त होते हुये (ते) वे देव (एक्षन्त) वह सोचने लगे कि (अस्माकं एव-अयम् विजय) हमारी ही यह विजय और (अस्माकं एव अयं महिमेति) हमारीही यह महिमा है॥ १४ ॥

भा० - यहां अलंकारसे उपदेश दिया है कि, संसारमें सर्वत्र ब्रह्मकी विजय है। ब्रह्मसेही ये पृथिवी आदि भूत सामर्थ्य पाकर स्व स्व कार्य करनेमें समर्थ हुए है। परन्तु अज्ञानी मनुष्य यह समझता है कि, यह सारी विजय और सारी महिमा जो विविध जगत्में प्रकाश हो रही है, पृथिवी आदि देवताओं की है यह इसका अज्ञान है।

नोट—यहां गौण प्रयोग जड़में चेतनके समान किया गया है। ऐसा अन्यत्र भी होता है। जैसे इस मन्दिरकी छत गिरना चाहती है। यह चाहना यद्यपि चेतनमेंही बनती है तथापि यह जड़में व्यवहार किया है, आशय यहां छतके गिरने से है, ऐसेही देवताओंका विचार और महत्व आदि प्रयोग भी समझने। आगे भी ऐसे गौण प्रयोग होंगे पाठक उसको भी ऐसाही समझें।

तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो हप्रादुर्वभूव। तन्नव्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ॥ १५ ॥

(तत्) ब्रह्म (एषाम्) इन पृथिवी आदि देवताओं के आशयको (विजज्ञौ) विशेष रूपसे जान गया (तेभ्यः) उनके लिये निश्चय करके (प्रादुर्बभूव) प्रकट हुआ तब इन देवताओंनें (नव्यजानन्त) नही जाना (कि) कौन (इदम्) यह (यक्षम्) यक्ष है (इति) ऐसा ॥ १५ ॥

भा०—यक्ष नाम ब्रह्मका है "महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये० अथर्व-१०-७-३८"में कहा है कि, वह ब्रह्म जानता है, परन्तु अज्ञानी यह नही समझता तब उसके बोध करानेके लिये ज्ञानी विद्वान् उसको महती शक्तियोंका वर्णन करते हैं, वही उसका प्रकट होना है, वस्तुतः वह सर्वत्र सदा प्रकट है।

तेऽग्निमब्रुवन् जातवेद एतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥ १६ ॥

(ते) वे पृथिवी आदि देवता (अग्निम्) अग्निको (अब्रुवन्) कहने लगे कि (जातवेद) हे प्रकाश करनेहारे जातवेदअग्ने (एतत्) इसको (विजानीहि) जान (किम्) कौन (एतत्) यह (यक्षम्) पूजनीय है (इति) यह (तथा) अच्छा अस्तु ॥ १६ ॥

भा०—मनुष्यको समझानेके लिये यह अलंकार रूपसे जड़में चेतनका प्रयोग किया है, अर्थात् पृथिवी आदि सब देव मिलके अपनेमें मुख्य अग्निदेवको पूछते हैं कि आप सर्व प्रकाशक हो आप बतावें कि यह कोन वस्तु है, जो सर्वोपरि सर्व नियन्ता सर्व रचयिता सर्व शक्ति है, अग्निके ओरसे उत्तर है कि अस्तु अच्छा।

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत् कोऽसीत्यग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदावाअहमस्मीति ॥ १७ ॥

वह अग्नि (तत् अभ्यद्रवत्) उस ब्रह्मके पास गया तब (तम्) उस अग्निको (अभ्यवदत्) कहा (कः) कौन (असि) है (इति) वह अग्नि बोला (अग्निः वै अहंअस्मि) निश्चय मैं अग्नि हूं (इति अब्रवीत्) ऐसा कहा (जात वेदः वै अहम् अस्मि) निश्चय मैं जातवेद अर्थात् रूप प्रकाशक हूं (इति) यह ॥ १७ ॥

भा०—यह भी गौण रूपसे कथन किया है कि अग्नि यक्षके पास गया, तब यक्षने उस अग्निसे पूछा तू कौन है वह बोला मैं अग्नि हूं "जातवेदा" मेरा नाम है, "वै" शब्द अभिमान सूचक है तात्पर्य्य यह है कि, संसारमें अग्निकी शक्ति सबसे अधिक दिखती है, अतः अग्निका सबसे पूर्व कथन किया है, संसारमें जितना काम होरहा है वह सब चेतनके आश्रयसे (सर्वे निमेषाजज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि) परन्तु अज्ञानी यह समझता है कि, चेतनका यहां क्या काम है। अतः अज्ञानीको चेतनका ज्ञान करानेके लिये यह आख्यायिका कही है।

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्य्यमित्यपीदꣳ सर्वंदहेयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥ १८ ॥

उस पूजनीय ब्रह्मने अग्निसे पूछा कि (तस्मिन्) उस (त्वयि) तुझ अग्निमें (किम्) क्या (वीर्यम्) सामर्थ्य है तब अग्नि बोला कि (इदम्) इस (सर्वम्) सबको (अपि)

ही (दहेयम्) जलादेवूं (यत्) जो (इदम्) यह (पृथिव्याम्) पृथिवीमें है (इति) यह ॥ १८ ॥

भा०—चेतनने पूछा जड़ अग्निसे। तेरेमें क्या शक्ति है? अग्निने उत्तर दिया कि, जो कुछ पृथिवी में है, मैं चाहूं तो सबको जला देवूं। अर्थात् जलानेकी शक्ति मुझमें है, सबको जला सकता हूं।

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्नशशाक दग्धुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ १९ ॥

ब्रह्मने (तस्मै) उस अग्निके लिये (तृणम्) घासका तिनका (निदधौ) रख दिया और कहा कि (एतत्-दह इति) इसको जला यह है तृण (तत्) उसको (सर्वजवेन) संपूर्ण वेगसे (उपप्रेयाय) पास गया तो भी (तत्) उस तृणको (दग्धुम्) जलानेको (न) नही (शशाक) समर्थ हुआ (सः) वह अग्नि (ततएव) उस कामसे ही (निववृते) हट गया और कहने लगा कि (एतत्) इसको (अशकं विज्ञातुम्) मै नही जान सका (यत्) जो (एतत) यह (यक्षम्) यक्ष पूजनीय है (इति) ऐसा ॥ १९ ॥

भा०—ब्रह्मने उस अग्निके आगे तृण रख कहा कि, इस को जला। अग्नि सारे वेगसे उस तिनकेके पास गया, पर अग्नि उस तिनकेको न जला सका, तब वह उतनेसेही लौटा और आके बोला कि मैं इसको नही जान सका, यह कोन यक्ष है। तात्पर्य यह है कि, अग्निमें जलानेकी शक्ति भी चेतन ब्रह्मकी दी हुई है, उसकी इच्छा वा आज्ञाके

बिना यदि जला सकता तो प्रलयकालमें भी जला सकता, परन्तु उस अवस्थामें ईश्वरकी आज्ञा नहीं है। अतः नही जला सकता। इस आख्यायिकामें चेतन शक्तिके बिना जड़ कुछ नहीं कर सकता, यह समझानेका प्रयास किया गया है।

अथ वायुमब्रुवन् वायवेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥ २० ॥

अब अग्निके बल परीक्षाके पश्चात् सारे देवता (वायुम्) वायुको (अब्रुवन्) बोले कि (वायो) हे वायु तू (एतत्) इसको (विजानीहि) जानता है (किम्-एतत्-यक्षम्-इति) क्या यह पूजनीय है, वायु बोला बहुत अच्छा, ऐसा ॥ २० ॥

भा०—पूर्वोक्त प्रकारसे प्रश्न वायुकी शक्ति जानने जतलानेके लिये यह प्रश्न है, वायुको अग्न्यादि देवताओंने मिलके कहा कि हे वायु तू जान कि यह कौन यक्ष है वायुने कहा अच्छा।

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वावाअहमस्मीति ॥ २१ ॥

वायु (तत्) उस ब्रह्मके (अभ्यद्रवत्) समीप गया (तम्) उस वायुसे ब्रह्मने पूछा (इति) ऐसा कि तू (कः असि) कौन है (अभ्यवदत्) वायु बोला (वै) निश्चय कर (अहम्-मातरिश्वा-अस्मि-इति) मैं अन्तरिक्षमें विचरने वाला "मातरिश्वा" नामक हूं, ऐसा (अब्रवीत्) बोला ॥ २१ ॥

भा०—पूर्ववत्।

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्य्यमित्यपीदꣳसर्वमाददीयं यदिदं पृथिव्यामिति॥२२॥

ब्रह्मने पूछा (तस्मिन्—त्वयि) उस तुझ में (किम्) क्या (वीर्यम्) पराक्रम है वायु बोला (यदिदम्) जो ये (पृथिव्याम्) पृथिवीमें है (इदम्-सर्वम्-अपि) इस सबको भी (आददीय) उड़ादूं ऐसी मुझमें शक्ति है॥ २२॥

भा०—पूर्ववत्।

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ २३ ॥

ब्रह्मने (तस्मै) उस वायुके लिये (तृणम्-निदधौ) तृणका तिनका धर दिया और कहा कि (एतत्—आदत्स्वइति) इसको उड़ादे (तत्) तृणके उड़ादेनेको वायु (सर्व जवेन) सारे बल से (उप प्रेयाय) तृणके समीप गया (तत्) उस तृणको (आदातु') उड़ानेको (नशशाक) असमर्थ हुआ न उड़ा सका (सः) वह वायु (ततएव) वह उतनेसे ही (निववृते) लौट आया और आकर अन्य देवताओंसे कहा कि (यत्—एतत्—यक्षम्—इति) जो यह यक्ष पूजनीय तमशक्ति है (एतत्-विज्ञातुम्—नअशकम्) इसके जानने को मैं समर्थ नहीं हूं वा मैं इसको नहीं जान सकता॥ २३॥

भा०—वायु में उड़ानेकी शक्ति भी ब्रह्मको दी हुई है। ईश्वरकी प्रेरणाके बिना स्वतः वायु कुछ नहीं कर सकता। ऐसे ही अन्य जलादिका भी समझना चाहिये, यहां अग्नि वायुका कथन उप लक्षण मात्र है।

अथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ॥ २४ ॥

(अथ) वे देवता वायुकी सामर्थ्य जानने के पश्चात् (इन्द्रम्) जीवात्माको (अब्रुवन्) कहा कि (मघवन्) हे मघवन् जीवात्मन् तू (विजानीहि) जानता है (किम्) क्या (ऐतत्) यह (यक्षम्) यक्ष है (इति) ऐसा कहकर (तथा इति) तैसे ही स्वीकार करके अर्थात् ब्रह्मके जानने को स्वीकार किया (तत्) उस ब्रह्म के (अभ्यद्रवत्) समीप गया वह ब्रह्म—इन्द्र—जीवात्माको आते देखकर (तस्मात्) वहांसे (तिरोदधे) अन्तर्धान हो गया ॥ २४ ॥

भा०—जड़में ज्ञान न होनेके कारण यह बताया कि पृथिव्यादि संपूर्ण जड़भूतोंमें अपनी शक्ति नहीं है, परन्तु जीवात्मा चेतन है अतः चेतनको विचारनेके लिये ब्रह्म वहांसे छिप गया। अर्थात् जीव उस शक्तिका अन्वेषण करेगा तभी पावेगा, कहा भी है कि "जिन खोजिया तिन पायिया गहरे पानी बैठ" ईश्वरको शुद्धान्तः करणसे जो खोजेगा वही पावेगा।

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीं ताꣳ होवाच किमेतद्यक्षमिति ॥ २५ ॥

(सः) वह जीवात्मा (तस्मिन्एव) उसी ही (आकाशे) हृदयाकाश में (हेमवतीं) ज्ञानवती (बहु शोभमानाम्) बड़ी शोभा युक्त (उमाम्) उमा नाम की (स्त्रियम्) सूक्ष्म बुद्धिरूप स्त्रीको (आजगाम) प्राप्त हुआ और (ताम्) उस सूक्ष्म बुद्धिको (उवाच) कहा (किम्-एतत् यक्षम्) कौन यह यक्ष है (इति) ऐसा॥ २५॥

भा०-वह जीव जब हृदय अर्थात् विचार रूपी आकाश में गोता मारता है, तब उसको समाधिमें ब्रह्म विद्याके पानेवाली अति शोभा युक्त अर्थात् निर्मल स्वच्छ मेधा (धारणा वती बुद्धि) का लाभ होता है, जब जीव उससे मिलता है तब उससे पूछता है कि यह संसारका उत्पादक सर्व शक्ती कौन है, अर्थात् जब तक निर्मल स्वच्छ बुद्धिका और जीवात्माका योग नहीं होता बिचारावस्था नहीं आती। तब तक मनुष्य कुछ नहीं समझता।

इति तृतीयः खण्डः।

सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणोवाएतद्विजये महीयध्वमिति ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति॥ २६॥

(सा) वह सात्विकी सूक्ष्मबुद्धि (ह) निश्चयसे (ब्रह्म-इति-उवाच) यह ब्रह्म है ऐसा कहा (वै) निश्चय कर (ब्रह्मणः) ब्रह्मके (विजये) विजयमें (महियध्वम्-इति) महिमावाले हों (ततः) उस सात्विकी बुद्धिके उपदेशान्तर (ह-एव) ही इन्द्र संज्ञक जीवात्माने (विदाञ्च कार) जाना (ब्रह्म-इति) यह ब्रह्म है॥ २६॥

भा०—जीवात्मा सात्विक बुद्धिसे विचार करता है तभी उसको ईश्वरके स्वरूपका ज्ञान होता है, बिना स्वच्छ बुद्धिके जीवात्मा भी ईश्वरको नहीं जानता। ऐसा कठ उपनिषद्में भी कहा है "दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्म दर्शिभिः" किन्तु सूक्ष्म बुद्धिसे दीखता अवश्य है, परन्तु सूक्ष्मदर्शीही उसको देख सकता है, ऐसा कठ वल्लीमें कहा है। वही तात्पर्य यहां भी समझो, और यह भी समझना चाहिये कि, यह सारी महिमा सर्व क्रिया सारी चेष्टा उसी ब्रह्मकी आज्ञासे हो रही है, अग्निमें जलाने प्रकाश देने, वायुमें उड़ाने आदि जो जो भूतोंमें क्रिया है वह सब उसकी प्रेरणासे है।

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान्देवान् यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्शुस्ते ह्येनत् प्रथमोविदांचकारब्रह्मेति।२७।

(तस्मात्) पूर्वोक्त कारणसे (वै) निश्चय कर (एते-देवाः) ये पूर्वोक्त अग्न्यादि देवता (अतितराम् इव) प्रशंशनीय की तरह (यत्-अग्निः वायुः इन्द्रः) जो कि अग्नि वायुः इन्द्र है (तेही) वहही (एनत्) इसको (नेदिष्ठं) अत्यन्त निकट होकर (पस्पर्शु) स्पर्श करते हुए (तेहि) वे अग्न्यादि (एनत्) इस ब्रह्मको (प्रथमः) पहले (विदाञ्चकार) जानते भये (ब्रह्म-इति) यह ब्रह्म है।

भा०—जिस कारण अग्नि, वायु, इन्द्र येही उसके ज्ञान के लिये कारण हुए, इसी कारण इनको प्रशंशा हुई येही उसके निकट हुए थे, इन्हीं द्वारा ब्रह्मज्ञान हुआ था इन्होंनेही सबसे पूर्व ब्रह्म जाना।

तस्माद्वा इन्द्रो ऽतितरामिवान्यान् देवान् सह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श सह्येनत् प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ २८ ॥

(तस्मात्) इसी कारण (वै) निश्चय कर (स हि) निश्चय (स इन्द्रः) वह जीवात्मा (अन्यान्-देवान्) अन्य अग्न्यादि देवताओंको (अतितराम् इव) उल्लङ्घन कियेकी न्यांई (एनत्) इस ब्रह्मको (नेदिष्ठम्) अति समीपसे (प्रथमः) पहले (पस्पर्श) स्पर्श करता हुआ (सहि) वही इन्द्र जीवात्मा (एनत) इस ब्रह्मको (विदाञ्चकार) जानता भया ॥ २८ ॥

भा०—यह अख्यायिका केवल कल्पित यक्ष और देवता रूप संवादसे कही है। यथार्थव्रत नहीं। और नहीं ब्रह्म किसी रूपको धारण करता है। और नाहीं अग्नि आदि बोलते हैं। जो सर्वव्यापक है वह कहां छिप सकता है। और किससे अलगहोकर बात करे। अग्नि किसके पास जाके कहे क्योंकि अग्निमें भी व्यापक है। परन्तु इस अख्यायिकाका भावही लेना है। सो भाव यह है कि, अग्न्यादि जितने पदार्थ जड़ हैं, वह सब चेतनाश्रत हैं, बिना चेतनकी आज्ञाके वे कुछ नहीं कर सकते। परन्तु अज्ञानी लोक उसकी महिमाको न जानते हुए यह कह दिया करते हैं कि, यह जगत् स्वभावसे ही है इस स्वभावका खण्डन इस कथामें किया है कि, स्वभाव कैसा ? यदि स्वभाव हो तो सदा ही रहना चाहिये। यह भी स्वभाव बनने वा बिगड़नेका वा दोनोंका यदि बननेका हो तो बनताही रहना चाहिये। यदि बिग-

डनेका हो तो बिगड़ते ही रहना चाहिये। यदि दोनोंका तो क्या समान भावसे वा न्यूनाधिकतासे? सो यह बन नहीं सकता। अतः स्वभाव कुच्छ नहीं,। चेतनाश्रत यह सम्पूर्ण जगत् है। और इस सम्वादमें यह भी दर्शाया है कि, जीवात्मा को ही ब्रह्मका ज्ञान होता है। परन्तु जब जीव की शुद्ध अवस्था अर्थात् अन्तःकरणमें मलादि दोष नहीं होते। उसी समयमें सूक्ष्म बुद्धि होती है। उसी ही विचारा-वस्थामें ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। जो लोग यहां इन्द्रसे सूर्य्यका अर्थ लेते हैं, वे इसका मर्म नहीं जानते। प्रथम अग्नि-वायु तो उपलक्षण है। सारे जड़ भूतोंका ग्रहण इस से होता है चेतनके विना इनकी गति नहीं। वे अपनी कुछ शक्ति नहीं रखते। ऐसा बताके पीछे यह बताया है कि, इन्द्र जीवात्मा बुद्धिसे मिलके उसको जानता है।

तस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्युतदा ३ इतीतिन्यमीमिषदा ३ इत्यधिदैवतम् ॥२९॥

(तस्य) उसका (एषः) यह (आदेशः) उपदेश (यत) जो (एतत्) यह (विद्युतः विद्युतत् आ) बिजुलीकी चमकके सदृश (इत्) ठीक (न्यमीमिषत् आ) चमकनेके सदृश है (इति अधिदैवतम्) यह अधिदैवत उपदेश है अर्थात् पृथिवी आदि भूतोंसे इस प्रकार ईश्वरका ज्ञान होता है ॥ २९ ॥

भा०—ब्रह्मका जो यह उपरोक्त उपदेश भूतों द्वारा किया गया है। यह अधिदैवत कहाता है। क्योंकि देवतों द्वारा हुआ है। और वह विद्युतके चमत्कारके सदृश है।

सदैव ऐसी अवस्था नहीं होती। जब निर्विकल्पसमाधि होती है। तभी ब्रह्मका साक्षात्कार होता है।

अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं सङ्कल्पः॥ ३०॥

(अथ) अब देवता सम्बन्धी उपदेशके पश्चात् (यत् एतत्) जो यह (मनः) मन (गच्छति इव) जैसा जाता है ब्रह्मके समीप ऐसेही ध्यान करे (च) और (अनेन) इससे मनसे (उपस्मरति) समीपस्थ स्मरण करे (च) और (सङ्कल्प) वृत्तियोंको (अभीक्षणम्) प्रत्येक क्षणमें ब्रह्ममें लगावे यह (अध्यातमम्) अध्यात्म उपदेश है। अर्थात् वार वार अपने अन्दर वृत्तियोंको रोककर जो विचार करना है। वह अध्यात्म उपदेश कहाता है॥ ३०॥

भा०—विचारवान् मन जिस प्रकार सर्व विषयोंसे हट कर ब्रह्ममें लगे ऐसा ध्यान करे। और मनसे ब्रह्म चिन्तन करे। विषयोंको त्यागके और वार वार उसीका चिन्तन उसीका स्मरण करता रहे। यही अध्यात्म उपदेश कहा है।

तद्ध तद्वनं नाम तद्वन मित्युपासितव्यं स य एतदेवं वेदाऽभि हैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति॥ ३१॥

(तत् ह) वह पूर्वोक्त ब्रह्म (तत्) वह (वनम्) वननीय सेवनीय है (नाम) प्रसिद्ध परमात्मा (तत्) वह (वनम्) पूजनीय ब्रह्म है (इति) इस प्रकार से (उपासितव्यम्) उपासना करने योग्य है ब्रह्म (सः यः) वह

उपासक मनुष्य (एतत्) इस ब्रह्मको (एवम्) इस प्रकार (अभिवेद) सर्व प्रकारसे जानता है (एवम्) उस उपासक की (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणी (ह) निश्चय (संवाञ्छति) वाञ्छा चाहना करते हैं अर्थात् वह सर्व प्रिय होता है।

भा०—जो उपासक उसको सर्वोपरि पूजनीय प्रियतम आत्माका आत्मा समझके उपासनामें तत्पर होता है। वह सर्व प्रिय होता है।

उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद्ब्राह्मीं वाव त उपनिषदम ब्रूमेति ॥ ३२ ॥

शिष्य बोला (भो) पूजनीय भगवन् (उपनिषदम्) उपनिषद् को (ब्रूही) कहिये। आचार्य ने कहा कि, (ते) तेरे लिये (उपनिषद्) ब्रह्मविद्या (उक्ता) कह चुका (वाव) निश्चय कर (ते) तेरे लिये (ब्राह्मीम्) ब्रह्मसंबन्धनी (उपनिषदम्) ब्रह्मविद्याको (अब्रूम्) कह चुके हैं (इति) ये संपूर्ण ब्रह्मविद्या कहदी ॥ ३२ ॥

भा०—शिष्य आचार्य को भो संबोधन करके पूछता है कि, भगवन् उपनिषद् कहो। कोई भेद अवशिष्ट है तो कहो? आचार्य कहते हैं कि, कोई भेद नहीं। कोई रहस्य शेष नहीं। जो ब्रह्मसम्बन्धनी उपनिषद् हैं, वह तेरे को कह दी। निश्चिन्त होकर ईश्वरका ध्यान कर।

तस्यै तपो दमः कर्म्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥ ३३ ॥

(तस्यै) उस उपनिषद् रूपी ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिके लिये (तप) सहनशीलता मान अपमान क्षुधा प्यासादि द्वन्द्वोंका सहन करना (दमः) इन्द्रियोंको विषयोंसे पृथक् करना मनको विषयोंमें न लगने देना (कर्म) नित्य नैमितिक प्रायश्चितादि कर्मों को करना परोपकारसे न हटना यही ब्रह्म विद्याकी (प्रतिष्ठा) स्थिति वा प्रशंसा है अर्थात् तपः दमः कर्म इत्यादि करता रहे। तब ही ब्रह्म विद्या रहती है। वा ज्ञानवान्को चाहिये कि, तप दम कर्म करता रहे। तभी ब्रह्मविद्याकी संसारमें प्रतिष्ठा होगी। (वेदः) वेद चार (सर्वाङ्गानि) वेद के छओं अङ्ग—अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष्, छन्द,-(सत्यम्) सत्य यह उपनिषदोंका वा ब्रह्म बिद्याका (आयतनम्) घर है ॥ ३ ॥

भा०—ब्रह्मविद्या ही का नाम उपनिषद् है। शिष्य सब कुच्छ सुनकर फिर कहता है कि, उपनिषद् कहो अर्थात् इसमें शेष कुछ है तो कहो? आचार्य कहते हैं कि, हमने सब कुछ कह दिया। शेष रहस्य कुछ नहीं। हां! इसकी प्रतिष्टाके लिये,वा स्थितिके लिये, तप दम कर्म यह आंकांक्षित है। और सत्य मानो तो इसी ब्रह्म बिद्या वा उपनिषद् का आयतन (घर) है। यही अवशिष्ट था सो कह दिया।

यो वा एतामेवं वदोपहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ॥ ३४ ॥

(यः) जो (वै) निश्चय करके (एतां) इस ब्रह्म विद्याको (एवम्) उक्त प्रकारसे (वेद) जानता है वह (पाप्मानम्) पापोंको (अपहत्य) परे फैंककर (अनन्ते) अन्त रहित (स्वर्ग लोके) स्वर्गलोक अर्थात् मोक्षमें जो ये सबसे श्रेष्ठ (प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति) ठहरता है प्राप्त करता है।

भा०—जो ज्ञानवान उपरोक्त साधन सहित ब्रह्म-विद्याको जानता है। वह अनेक जन्मोके पापोंसे छूटकर मुक्त हो जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं। प्रतिष्ठिति यह दो वार इसलिये कहा है, कि निश्चय निसन्देह मुक्ति हो जाता है। इस विषयको निश्चय दिखानेके लिये तथा ग्रन्थ समाप्तिके लिये कहा है।

इति सामवेदीयतलवकारोपनिषत्समाप्ता।

छप रहा है ! सचित्र !! छप रहा है !!!

शास्त्रार्थ काशी ।

यह शास्त्रार्थ सन् १८६९ में स्वामी श्री विशुद्धानन्दजी सरस्वती आदि काशीके पण्डित और स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीके साथ मूर्त्ति पूजा विषय पर हुआ था।

इस पुस्तकमें उसी शास्त्रार्थका पूरा पूरा विवरण कई पुस्तकों एवं उस समयके समाचार पत्रोंसे संग्रह कर दिया गया है।

शास्त्रार्थ वृत्तान्तके अन्तमें कई समाचार पत्रोंकी सम्मतियां भी उद्धृत करदी गई हैं।

यदि आप उक्त शास्त्रार्थका सच्चा वृत्तान्त जानना चाहते हैं तो ! इस पुस्तकको अवश्य पढ़िये। आजतक इस शास्त्रार्थकी इस प्रकारकी पुस्तक जिससे शास्त्रार्थका पूरा पूरा हाल ज्ञात हो कहीं नहीं छपी। मूल्य =) दो आना मात्र।

गोविन्दराम,
"सुलभ साहित्य प्रचार कार्य्यालय"
२१३, बहूबाजार ष्ट्रीट,
कलकत्ता ।